सूअर का छौना

जयश्री रॉय

सूअर का छौना

दुखी जन्म का दुखी है। पैदा होते ही अपनी महतारी को खा गया। साथ ही अपने बाप को भी गँवा बैठा। इधर वह सूअर के बाड़े में पड़ा भूख से कोकिया रहा था, और उधर

https://www.hindiadda.com/sooar-ka-chhauna/

टेटनस से मुड़कर एकदम धनुष बनी उसकी महतारी के खुले दहाने में मक्खियाँ भिनक रही थी। बीच में दादी बैठी बैन लगा रही थी, आसपास दो-चार तमाशाई 'च्-च्, चू-चू' का संगत किए जा रहे थे। उसका बाप अपनी मेहरारू के साथ इस 'सूअर के छौने' का क्रिया-करम करने के लिए बोतल भर कच्ची चढ़ाकर बाँस की खपच्चियाँ ढूँढ़ता फिर रहा था।

'साला शैतान पैदा हुआ है, पैदा होते ही अपनी महतारी को खा गया, सूअर का छौना नहीं तो...!'

उसी दिन बिना किसी विधि-विधान के दुखी का नामकरण हो गया था - 'सूअर का छौना'। 'दुखी' तो उसकी दादी उसे दुखी होकर बुलाती थी। मगर दुखी को अपना यह दूसरावाला नाम बहुत अच्छा लगता था। इसमें छींटभर सही, उसके लिए अपनापन होता था। माँ हारा दुखी बचपन से प्रेम का कंगाल जो बनकर रह गया था।

गिद्ध जैसी नाक और मिचमिचाती खच्चर जैसी आँखोंवाली उसकी दादी ने उसे प्रसूति-गृह में मरने नहीं दिया था। अपने फटे आँचल की ओट में लेकर उसे उसके रावण जैसे बाप और उन-ताप, बारिश के अत्याचार से साध्यभर बचाया था। मुँह में भी कुछ न कुछ डालकर जिंदा रखा था, इतना कि वह अपने हाथ-गोड़ निकालकर रेंगते हुए ही सही एक दिन अपने रीढ़ पर खड़ा हो जाय और अपनी जठर-अग्नि में डालने के लिए दो बेला दो मुट्ठी अन्न का जुगाड़ कर सके। वर्ना तो उसका बाप उसके जन्मते ही उसकी इहलीला समाप्त करने का पूरा बंदोबस्त कर ही चुका था!

खैर! दुखी अपने दुख से अनजान जंगली घास-पात की तरह बिना खाद-पानी के अंगुल-अंगुल बढ़ता रहा और उसके साथ उसका पेट भी। दुखी का असली और एकमात्र दुख उसका अपना यह मटके जैसा पेट ही था जो चारों प्रहर दावानल की तरह धू-धूकर जलता ही रहता था। लगता था, विधाता ने उसे एक तलहीन कुएँ जैसा पेट देकर उसके दाना-पानी का बंदोबस्त करना ही भूल गए थे। देवता तो देवता हैं, अग-जग की पीर भुलाकर योग-निद्रा में लीन हो सकते हैं। मगर आदमजात तो अपने पेट को नहीं भूल सकता, इसी की सनातन अग्नि में तो उसका सब कुछ होम होता रहा है - ईमान-धरम, लोक-परलोक! अब इनसान इस लोक में जीए तो उस लोक की सोचे!

सो बेचारा दुखी रोज सुबह-सुबह इसी नरक कुंड की आग से तड़पकर उठ बैठता है और फिर सारा दिन इसी आग को बुझाने के सौ-सौ जतनकर रात होते-होते थक-हारकर घोंत-घोंताते सूअरों के बाड़े के पास एक बेहोशी-जैसी मीठी नींद में पड़ा रह जाता है।

दुखी के बाप सुखी का चेहरा देखकर नहीं लगता वह कहीं से भी सुखी है। जली हाँडी जैसे चेहरे पर कुत्ते जैसी लाल घुलघुली मद्यप आँखें और गालों पर उगी कच्चे-पक्के बालों की झाड़-झंकाड़... ऊपर से उसके कटहा कुत्ते-से किसी अज्ञात हिंसा में निरंतर निपोरे दाँत और भींचे हुए जबड़े उसके अवतार को और भी भयावह बना देते थे।

सुखी-दुखी के पास विषय-संपत्ति के नाम पर घास-फूस की एक मुट्ठीभर झोंपड़ी और आठ-दस सूअरों के सिवाय कुछ भी न था। यही सूअर उनकी आमदनी का मुख्य जरिया थे। हर तीन महीने में कोई न कोई सूअरिया आठ-दस बच्चे बियाती जिन्हें हाट-बाजार में बेचकर उनका घर चलता।

जब से दुखी उठकर चलने-फिरने के काबिल हुआ है, ये सूअर उसकी जिम्मेदारी बन गए हैं। उन्हें नहलाना-धुलाना, कीचड, नाले से उठाकर लाना, बाड़े में बाँधना - सभी कुछ उसी को करना पड़ता है। उनकी झोंपड़ी में खिड़की-दरवाजा रहित एक ही कोठरी है जिसके चार कोने दिन के चार कामों या जिंदगी के चार पड़ावों के लिए अनजाने ही बाँध दिए गए हैं। एक कोने में उनका खाना पकता है, एक कोने में दुखी का बाप सुखी पूरी जगह घेरकर दिन के चौदह घंटे कच्ची के नशे में पड़ा रहता है, तीसरे कोने में सुखी, दुखी के सुखी-संपन्न तैतीस करोड़ भगवान रहते हैं। एक कुलंगी और लगभग पूरी दीवार को घेरकर देवी-देवताओं की तस्वीरें लगी हुई हैं। सुखी एक बार ताड़ी, कच्ची पीना भूल जाता है, मगर अपने भगवान के आगे दीया बालकर मत्था टेकना कभी नहीं भूलता। घर में ढीबरी, चूल्हा जले न जले, भगवानजी का दिया जरूर जलता है।

सुखी बहुत धर्मप्राण प्राणी है। मंदिर की सीढ़ियों से सौ गज दूर बैठकर अपनी छाया से सबको बचाते हुए ध्यानमग्न होकर रामायण पाठ सुनता है और जब पंडित जी दराज कंठ से गाते हैं 'ढोल, गँवार, शूद्र औ नारी... ताड़न के अधिकारी' तब वह भक्तिभाव से गद्-गद् होकर जमीन पर लोटने लगता है - जय हो भगवान, तुमरी किरपा अपरंपार...

...इसी झोंपड़ी का एक कोना बीमार पड़ने और अंततः मर जाने के लिए आरक्षित है। इसी कोने मे दुखी के दादा मरे थे, महतारी मरी थी और कई सालों के बाद दादी भाग्यवती भी कई महीनों तक बीमार रहकर आखिर एक दिन अपनी एड़ियाँ रगडती हुई तथा भाग्य को कोसती हुई परलोक सिधार गई थी। उस समय अभागी भाग्यवती के शव से थोड़ी ही दूरी पर उसका बेटा भीषण नाक बजाते हुए ताड़ी के नशे में धुत सोया पड़ा था और पोता दुखी परम सुख से थाल भर गर्म माड़ में मुँह डुबाकर 'सरप-सरप' माड़ पी रहा था। बाहर बाड़े में सारे सूअर न जाने क्यों एक साथ

चियार-चियारकर कान के पर्दे फाड़े डाल रहे थे। मगर दुखी, सुखी के कान में जूँ तक न रेंगी थी।

दूसरे दिन जब सुखी की आँखें खुली, जन्मभर की मरगिल्ली भाग्यवती का शव गर्मी में फूलकर ढोल बन चुका था। खुले हुए मुँह पर भिनभिनाती मक्खियों से मधुमक्खी का छत्ता-सा बँध गया था। उसके बगल में दुखी उसका फटा आँचल ओढ़े बेखबर सोया पड़ा था। सुखी ने हमेशा की तरह उसे लतियाकर उठाया तो उठते ही दादी के मरने की खबर सुनकर वह भी बाड़े में चिंचियाते हुए सूअरों के साथ गला मिलाकर कोरस में चिल्लाने लगा। सुखी ने जब चार लातें और जमकर जमाई तब जाकर उसका बुक्का फाड़ना बंद हुआ।

जीवन में भाग्यवती की बड़ी इच्छा थी कि मरने के बाद उसका क्रिया-करम अच्छी तरह से हो ताकि वह भी बबुआन लोगों की तरह सरग में जा जा सके। उस अपढ़ को पता नहीं था कि स्वर्ग में जगह रिजर्वेशन कराने के लिए चिता में खूब सारा घी ढालना पड़ता है और बाभन को ठूँस-ठूँसकर जिमाना भी पड़ता है। तगड़ी प्रणामी अलग से... ऊपर से जात का डोम, स्वर्ग के देवता तो मरते-धरते नहीं, फिर वहाँ इस डोमनी का क्या काम! न वहाँ उगे बाँस, न बसे डोमनी... खैर दो-चार रबर के टायर और कनस्तर भर किरासीन के तेल से ही काम सल्टा लिया गया। दुखी को संदेह हुआ, ऐसे घटिया क्रिया-करम से तो उसकी दादी पीपल की चुड़ैल से ज्यादा कुछ बन नहीं पाएगी। अब शाम गए वह मंदिरवाले पीपल के पास से बचकर निकलने लगा। उसे पता था, उसकी दादी को सुरग जाने का कितना लालच था। अब जरूर पीपल की डार में चमगादड़ की तरह लटककर सुरग जाने के लिए पंख फरफरा रही होगी।

भाग्यवती के मरते ही झोंपड़ी की जगह बढ़ गई थी। दुखी को लगा, अब वह भी पैर पसारकर सो सकेगा। कुचुमुचु सो-सोकर उसके ठेवने पिरा गए थे। मगर हुआ बिल्कुल उल्टा। अब सुखी दो दूना चार होकर और भी फैलाकर सोने लगा। दुखी का आखिरी आश्रय भी छिन गया। पहले दादी के फटे आँचल की ओट थी, अब आकाश का चँदोबा सर पर था - एकदम खुला और भाँय-भाँय करता हुआ... आखिर कब तक वह सुखी के बिगड़े बैल-सी लातें रातभर झेलता रहता। एक बार सुखी की जोरदार लात खाकर वह अपने बीच के दो दाँत एक साथ गँवा बैठा था। तब से बात करने में तकलीफ होती है, दाँत के बीच से हवा निकलकर गले के कौए को सुरसुराता है और मुँह से सीटी जैसी आवाज बेखास्ता निकल जाती है। हकलाता तो वह पहले से ही था। लोग उसकी आधी बात समझते, आधी नहीं। अब तो सब उसे हकला भी पुकारने लगे थे। इन सब बातों से हारकर वह बाहर सूअर के बाड़े के पास सोने लगा। सूअर रातभर 'घोंत-घोंताते' हैं,

मगर उसे उनकी अच्छी-खासी आदत हो गई थी। बिना किसी असुविधा के वह उनके बीच निश्चिंत सोया पड़ा रहता है।

दुखी, सुखी की झोंपड़ी गाँव के बाहर श्मशान के पास है। इस श्मशान का उन्हें बड़ा सहारा है। ठंड के दिनों में कड़कड़ाती हुई ठंड से बचने के लिए दुखी, सुखी किसी जलती हुई चिता के पास बैठकर रात के समय आगी तापता है। कभी-कभी दो-चार लकड़ी का चैला भी उठा लाता है। उनके डोम टोले में कुछ घर और भी हैं। मगर उनमें उसका समवयस्क कोई नहीं है। दामू और टिल्लू बच्चे होकर भी उससे उमर में काफी बड़े हैं। दोनों की मसें भीगने लगी हैं। वे बदमाश भी बहुत हैं। उसके पास जाते ही दोनों ढेला उठाकर मारते हैं। कहते हैं - सूअर का छौना, महतारी खौका... उसने उन दोनों को मनमनाती दुपहरिया में गोहाल में छिपकर 'गाय-बैल' खेलते हुए देखा है। एक बार उसे भी पकड़कर पेट के बल लिटा दिया था, मगर वह किसी तरह जान लेकर भाग आया था।

सुबह दुखी गड़हा के पास खड़ा होकर दूसरे बच्चों को बस्ता लेकर स्कूल जाते हुए देखता है। बहुत बार आँवला, अमलोकी के जंगल में खड़ा होकर सर्दी के दिनों में बच्चों को स्कूल के आँगन की गुनगुनी धूप में बैठकर कोरस में पहाड़ा रटते हुए देर तक सुनता रहता है - एक एक के एक, एक दुनी दो... दुखी को पढ़ना अच्छा नहीं लगता, मगर बच्चों के साथ मिलकर 'कित्-कित्, कबड्डी, आयस-पायस खेलने का मन करता है। साथ ही स्कूल में दोपहर का खाना भी मिलता है। जब सारे बच्चे एक पंक्ति में बैठकर 'हापुस- हापुस' आवाज करके गरम खिचड़ी खाते हैं, उसके मुँह से लार बहकर थुथनी तक लसरिया जाता है।

एक बार उसकी दादी उसे स्कूल में दाखिला दिलवाने के लिए अपने साथ स्कूल ले गई थी। मगर चौकीदार गेट पर से ही दुत्कारकर उन्हें भगा दिया था - का रे! अब डोम का बचवा पढ़-लिखकर मजिस्ट्रेट बनेगा का... दादी और वह - दोनों खदेड़े हुए जानवर की तरह उस दिन वहाँ से भाग आए थे। मगर उसके बाद भी दुखी रोज स्कूल के पास जाकर खड़ा रहता था। एक दिन तिवारी मास्साब ने उसे रोज-रोज इस तरह गेट के पास खड़े देखकर अपने साथ अंदर ले जाकर स्कूल में उसका दाखिला करवा दिया था।

तिवारी मास्साब बहुत रहमदिल थे। छुआछूत बिल्कुल नहीं मानते थे। रोज दुपहर को सारे बच्चों को पहाड़ा रटाने में लगाकर उससे हाथ-गोड़ जँतवाते थे। उन्हें खुजली बहुत आती थी। सारा दिन जहाँ न तहाँ खुजाते रहते थे। कभी-कभी तो साँड की तरह दीवार से अपनी पीठ घिसने लगते थे। दुखी भी कभी मोर पंख तो कभी ऊन बीनने की

सलाई से उन्हें खुजाता रहता। मास्साब दुखी से अपने आँगन में झाड़ू लगवाने या लैट्रिन धुलवाने से भी परहेज नहीं करते थे। इन सब से जब उसे फुर्सत मिल जाती तब वह कक्षा के एक कोने में सबसे दूर बोरी बिछाकर सबके साथ पहाड़ों का रट्टा लगाता या हाथ जोड़कर प्रार्थना करता - माँ शारदे कहाँ तू वीणा बजा रही है... खाना भी उसे सबके बाद ही मिल पाता था, वह भी अपनी लाई हुई अल्मुनियम की थाली में।

बच्चे उसे देखते ही अपनी-अपनी नाक दबाकर 'छी, सूअर का छौना! सूअर का छौना' चिल्लाने लगते। कभी पास जाने की कोशिश भी की तो सबने घेरकर मारा भी। उसकी निकर भी फाड़ दी। सबकी नालिश पर जोधन मास्साब ने उसके कान उमेठकर क्वार मास की भर दुपहरी में मुर्गा बना दिया। पढ़ाई कुछ उसके मगज में घूसता न था। रोज-रोज बात-बेबात माथे पर गट्टा और पैरों में बेंत खाकर जल्दी ही उसका मन स्कूल से भर गया। और एक दिन स्कूल में मिलनेवाले लपसी, खिचड़ी का लोभ त्यागकर वह अपना बस्ता फेंककर मूतते हुए जंगल में भाग खड़ा हुआ। उस दिन यादव मास्टरजी ने गट्टा मारकर उसके सर पर आलू फुला दिया था। वह उनके पके बाल ठीक से नहीं बीन पा रहा था।

तिवारी मास्साब ने कई दिनों तक उसे ढूँढ़ने लड़के उसके घर भिजवाए। दुखी के बिना उनके हाथ-गोड़ जँतवाने और मालिश करवाने का काम ठप्प पड़ा था। तिवारी मास्टरनी अलग से परेशान थी। उनका लैट्रिन गंदा होकर अब बसाने लगा था। मगर दुखी कहाँ मिलता। कभी तो वह पहाड़ी के मंदिर की टंकी पर चढ़कर सोया रहता तो कभी किसी बैलगाड़ी के नीचे दुबका रहता। उधर तिवारीजी की जान साँसत में फँसी थी। थोड़े ही दिनों में उनके गाँव में दलित मंत्री का दौरा होनेवाला था। सरपंचजी अलग से उनके सर पर सवार थे। ग्राम सभा के दरबार में रोज उनकी पेशी और फजीहत हो रही थी। आखिर एक दिन दुखी पकड़ा ही गया। बच्चू माझी के खेत में निबटने के लिए बैठा ही था कि चार लड़के उसे लंगटा ही पकड़कर ले गए और पंचायत के सामनेवाले पाकड़ में रस्सी से बाँध दिए। तिवारी मास्साब ने जब खुले चूतड़ पर कस-कसकर बेंत लगानी शुरू की तब कभी सूअर की तरह चिचियाकर तो कभी नकटे की तरह नकियाकर उसने विलाप करना शुरू कर दिया - अरे बप्पा गे! हम सकूलवा नहींए जयबे... मास्साब मास्साब... तब उसने गाली बकी ... हमको बहुते दुखता है रे...! सुनकर भीड़ में सन्नाटा छा गया। तिवारी मास्टर अपनी छड़ी जिसे वे प्रेम से 'काले खाँ' कहकर बुलाते थे, वहीं फेंककर चुपके से वहाँ से खिसक लिए। दूसरे तमाशबीन भी हँसते-खिखियाते हुए वहाँ से हट गए।

उस दिन से दुखी को अपनी पढ़ाई और स्कूल से निजात मिल गई। वह फिर जीवन के पाठशाला में लौट आया और अपने पुराने सबक दोहराने लगा - सुबह उठकर सूअरों को बाड़े से निकालना, उनके मल-मूत्र साफ करना और शाम को उन्हें फिर से उनके बाड़े में डालकर उनके पास पड़े रहना।

दुखी का बाप सुखी सुबह से श्मशान में अर्थियों की प्रतीक्षा में तीर्थ के कौए की तरह बैठा रहता है। यदि किस्मत से कभी कोई आसपास के गाँव में मर जाता है तो उस दिन उसकी दारू और माड़-भात का इंतजाम हो जाता है। और जिस दिन घाट पर दो-तीन अर्थियाँ एकसाथ उतरती हैं, उसके पौ बारह हो जाते हैं। मगर आजकल हेल्थ सेंटर के गाँव में खुल जाने से लोग कुछ कम मरने लगे हैं, इस बात की चिंता सुखी को लगी रहती है। क्या हो जो कल लोग मरना ही बंद कर दें। दुखी भी किसी अच्छे दिन में एक थाल भात खाकर सूअरों के पास तृप्ति की नींद सोता है।

रोज दिन भर धूप, घाम में मर-खपकर सुखी पोटलीभर चावल और अपनी कच्ची की बोतल लेकर घर आता है। फिर आँगन के एक तरफ चैला लकड़ी के चूल्हे में भात की हाँडी चढ़ाकर बोतल लेकर बैठ जाता है। दुखी बाप के डर से आँगन के एक कोने में विनयी कुत्ते की तरह हाथ-पाँव सिकोड़कर बैठा रहता है। हाँडी में भात खदबदाता है और वह पकते भात की सुगंध अपने नथुनों में भरकर अंदर तक खींचता रहता है। भात की गंध की तरह सुंदर गंध और किसी की नहीं होती - फूलों की भी नहीं!

यकायक उसकी भूख से ऐंठती अंतड़ियाँ कुलबुलाने लगतीं और वह मुँह में थूँक घोंटने लगता। मगर भात पकते ही सुखी अपनी थाल में लगभग पूरी हाँडी ही उड़ेल लेता और फिर कड़वा तेल, नून डालकर गरम-गरम ही गोग्रास में निगलने बैठ जाता। दुखी आँगन के कोने में पुसे कुकुर-सा बाध्य बैठा धैर्य से बाप के भोजन समाप्त होने की प्रतीक्षा करता रहता। सिर्फ उसकी कुत्ते की तरह करुण चावनी में असीम लोभ निःशब्द घुला रहता। पेटभर खा चुकने के बाद सुखी बचा हुआ भात थाली में डालकर गहरी वितृष्णा से उसकी तरफ थाली सरका देता - ले रे सूअर का छौना, भकोस ले...

दुखी पिता की बात पर तिलमात्र भी दुखी हुए बिना कृतार्थ भाव से परोसी थाली के सामने पालथी मारकर बैठ जाता है और भात का एक-एक दाना चबा-चबाकर खाता है। इस नाममात्र नून डले भात का स्वाद क्या है कोई दुखी से पूछे। यही क्षण दुखी के जीवन के सबसे सुंदर क्षण होते हैं। इसी क्षण उसे यह सदा की कुरूप दुनिया बहुत-बहुत सुंदर लगने लगती है। सब कुछ सच प्रतीत होने लगता है - कुलंगी पर बैठे उसके बाप के तैतीस करोड़ देवी-देवता, झोंपड़ी का धँसा, टूटा आँगन और रात-दिन

चिचियाते सूअरों का जत्था... वह आँखें मूँदे भात का कौर चबाता है और बहुत अनिच्छा से धीरे-धीरे निगलता है। मगर वह जितना भी धीरे से क्यों न खाए, खाना जल्दी ही समाप्त हो जाता है। दो मुट्ठी भात आखिर कबतक बचे। वह अतृप्ति और खेद से भरकर अपनी सूनी थाली को देखता है और फिर उसे चाटना शुरू कर देता है। चाट-चाटकर अंततः वह थाली को इतना साफ कर देता है कि उसे फिर धोकर रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। बड़ी अनिच्छा से वह थाली उठाकर कोने में रखता है और आँगन के नीम के नीचे पसर जाता है। खाने के बाद वह जान बूझकर पानी भी नहीं पीता। पानी पीने से मुँह से भात का नमकीन स्वाद चला जाता है। लेटे-लेटे वह देर तक भैंस की तरह जुगाली करके मुँह में भात के स्वाद को जीवित रखने का प्रयत्न करता है। मगर आखिर वह एक बोसीदा गंध और कड़वे स्वाद में बदल ही जाता है।

भात खाने के बाद दुखी को नींद भी आती है और अच्छे सपने भी। एक बार उसने देखा था, कुलंगी पर बैठे उसके बाप के देवता लोग किसी बात पर प्रसन्न होकर उससे एक वरदान माँगने के लिए कहते हैं और वह झटपट रोज भरपेट भात मिलने का वरदान माँग लेता है। 'तथास्तु' कहकर बड़े-बड़े मुकुटवाले भगवान उसे स्वर्ग भेज देते हैं। स्वर्ग पहुँचकर वह हैरान रह जाता है - अरे बाप रे! इत्ता भात...! भात के ऊँचे-ऊँचे पहाड़, माड़ की टगबगाती नदियाँ... उसकी आँखें फटी पड़ रही है। जीभ लटककर घुटने तक पहुँच रही है, लार चुआ जा रहा है टपाटप... वह माड़ की गर्म, धुआँती नदी में कूद पड़ता है, डूब-डूबकर माड़ पीता है, और फिर पहाड़ पर चढ़कर पूरा पहाड़ ही पाँच मिनट में खा जाता है। अब उसका पेट भात से ठसाठस भरकर गंधर्वमादन पर्वत की तरह बड़ा बन गया है। उसके अंदर भात ही भात भरा हुआ है - नाक में भात, मुँह में भात, गले-गले तक - हर जगह भात...! अब उसे कभी भूख नहीं लगेगी, कभी नहीं... वह खुशी से चिल्लाते हुए उठ बैठता है और सामने ही पसरे हुए सुखी की गुस्सैल आँखें देखकर सहमकर चुप बैठ जाता है।

एक बार दुखी गाँववालों के साथ शहर किसी रैली मे हिस्सा लेने के लिए गया था। वहाँ रैली में अचानक अफरा-तफरी मच जाने के कारण वह दूसरे लोगों से अलग-थलग पड़ के भीड़ में खो गया था। उस दिन एक पूरी रात उसने एक समाधि के साए में गुजारी थी। पूस की थरथराती रात में वह सोने के लिए जगह तलाशता हुआ यहाँ-वहाँ भटकता फिरा था। पार्क की बेचें खाली पड़ी थी, मगर वहाँ सोना मना था। हवलदार डंडा पटकते हुए चौकसी कर रहा था। चारों तरफ भव्य, विशाल मूर्तियाँ ही मूर्तियाँ लगी थीं। उसने गाँधी चौक की तरफ देखा था, मगर गाँधी की लाठी देखकर डर गया था। लाठी का अर्थ उसके जीवन में बस एक ही था - उसकी धुलाई! मास्साब की लाठी,

बाप की लाठी, पटवारी की लाठी... और अब गाँधी की लाठी। उसने रुआँसा होकर विधान भवन के सामने लगी दूसरी मूर्तियों की तरफ देखा था, सुभाष उसे दूर से ही हाथ उठाकर चेतावनी दे रहा था, नेहरू विश्व समस्या पर चिंतित बैठा था, अरविंद आकाश की तरफ देख रहा था, पटेल भी दिल्ली की हदें बढाने में व्यस्त था, अंबेडकर बाबा तो संविधान में उसे अधिक से अधिक अधिकार दिलाने के लिए बहुत ही मशगूल दिख रहे थे। मगर उसे इतना सब कुछ थोड़े ही न चाहिए था। वह तो बस एक रोटी और सोने के लिए हाथ भर जगह की तलाश में था। मगर वह समझ सकता था, इतने बड़े लोग कभी इतना छोटा काम नहीं करते।

उस रात भूख से कुलबुलाते हुए उसने चाँद को तोड़कर खाने की तरकीब ढूँढ़ी थी। चाँद अधजली रोटी की तरह बीच गगन में लटका था। पास के ही कूड़ेदान में खाने के लिए जरूर कुछ न कुछ था, मगर उन आसपास फिरते हुए आवारा कुत्तों से लड़ने की ताकत उसमें नहीं बची थी। किसी से सुना था कभी, ये भव्य समाधियाँ मुर्दे लोगों के लिए बनाई जाती हैं। उस दिन ठंड से शून्य, भूख से बेहाल होकर गर्म रोटी, माँ की मुलायम देह की तरह बिस्तर के सपनों में डूबते हुए उसने सोचा था, क्या वह मर नहीं सकता...!

...उस दिन दुखी सारा दिन बाँस के जंगल में बाँस काटकर लौटा था। हाथ पंखे, टोकरी आदि बनाने के लिए सुखी को बाँस की दरकार थी। कोठरी में घुसकर एक बड़ी-बड़ी चूँचियोंवाली भैंगी स्त्री को अंदर बैठी देखकर वह असमंजस की स्थिति में आँगन में उतर आया था। पड़ोस के टिल्लू ने नीम के दातून इकट्ठा करते हुए उसे देखा तो अपने पास बुला लिया - क्यों रे छौना, नइकी महतारी निमन लगी? सुनकर वह चकराया-सा बैठा रह गया।

रात को बाप कच्ची के नशे में धुत लौटा तो उसके मुँह पर फटाक से दरवाजा बंदकर अपनी नई लुगाई के साथ गुत्थमगुत्था होकर पड़ गया। दुखी रातभर सूअरों के पास लेटा अंदर से आती उठापटक की आवाज सुनता और कुढ़ता रहा।

दूसरे दिन वही हुआ जिसका उसे डर था। नइकी महतारी के आने से उसके हिस्से का भात नइकी महतारी के हिस्से में चला गया। वह बाड़े की ओट में खड़ा अपने बाप और नइकी महतारी का 'हापुस-हापुस' करके गरम भात और आलू की रसदार सब्जी खाना देखता रहा। खा-पी चुकने के बाद जब उसके बाप की नजर उस पर पड़ी तब उसने ढेका उठाकर उसे कुत्ते की तरह वहाँ से दुरदुरा दिया। उस दिन बच्चू सिंह के खेत से एक शकरकंद खोदकर वह उसे कच्चा ही खाकर रात भर पड़ा रहा था।

दूसरे दिन सुबह उठकर उसने देखा था, मोटीवाली सूअरिया ने रात के किसी पहर दस बच्चे बियाए थे। बंद आँखों के चूहे सरीखे गुलाबी-गुलाबी बच्चे अपनी माँ के थन से चिपके कुकुआ रहे थे। वह उन्हें देर तक कौतुक से भरकर देखता रहा था। सुखी ने पिछले हाट के दिन चार सूअरों के साथ आठ बच्चे पहले ही बेच दिए थे। अब कुल मिलाकर दो सूअर और ये दस बच्चे ही बचे थे। बाप के साथ नई महतारी भी निकलकर सूअर के बच्चों को देख रही थी। खुशी के मारे दोनों ही दाँत चिंयार-चिंयारकर हँस रहे थे। बाप कह रहा था, समाज को मांस, दारू का भोज देना है, पंचायत का दंड भी भरना है, वर्ना नइकी महतारी का पुराना पति उसकी जान नहीं छोड़ेगा।

वह चुपचाप उठकर गड़हे के पास आ गया था। पेट में भूख से आग पड़ी हुई थी। दो दिन से उसने सिर्फ शकरकंद, केंद, महुआ और मकई ही खाई थी। कल नइकी महतारी ने चूल्हे से लकड़ी का जलता हुआ चैला उठाकर उसका गोड़ दाग दिया था। बाप के पास रोते हुए गया तो उसने उल्टा उसकी पसली में खोंचा मारकर पसली दुखा दी। नइकी महतारी ने कह दिया है, अब उसे बैठकर खाना नहीं निलेगा। उसे कस्बे के बड़े श्मशान में भीखू डोम के वहाँ काम करना पड़ेगा। वहाँ ज्यादा मुर्दे आते हैं, कमाई भी ज्यादा होती है। अगले रविवार को सुखी उसे कस्बे में पहुँचाकर आएगा।

सुनकर वह उस दिन बुढ़वा बाबा के थान के पास बैठकर बहुत रोया था, पता नहीं क्या छूट जाने के दुख से या किसके लिए। मन में कोई ऐसी सूरत नहीं जिसकी आँखों में उसके लिए कण भर भी प्रेम हो। वह मन ही मन सोचता है कि उसकी महतारी आज जीवित होती तो उससे प्रेम जरूर करती, उसको राजा बेटा, हमरा लाल कहकर बुलाती। वह दीवार पर टँगी देवियों की तस्वीरों की ओर देखकर अपनी माँ के चेहरे की कल्पना करने की कोशिश करती है। इन्ही की तरह रही होगी न उसकी महतारी - दूध जैसे रंगवाली, बड़ी-बड़ी आँखों और सुंदर मुस्कानवाली... वह गणेशजी को ईर्ष्या से देखता है। कैसा माँ की गोद में बैठा सूँड़ नचा रहा है। खा-खाकर पेट भी कितना बड़ा हो गया है! एक ही आदमी सबका खाना अकेला खा लेगा तो बाकी को भूखों ही न रहना पड़ेगा... वह अपने पेट में घुटना डालकर भूख को ठेउना मारते हुए मन ही मन गुनता है - एगो माँ, गरम भात और गरम-गरम बिस्तर...

नइकी महतारी के आ जाने से दुखी बहुत परेशान है। भात तो पहले ही बंद हो चुका है, लगता है अब झोंपड़ी का आसरा भी छिन जाएगा। बाबा के थान से मिसरी का प्रसाद लेकर वह घर लौटा तो सारे सूअर के छौनों को नदारद पाकर हैरान रह गया। छौने अभी बहुत छोटे थे, बेचने के लायक नहीं हुए थे। फिर एक बच्चा तो कम से कम

छोड़ना था, वर्ना सूअरिया आसमान सर पर उठा लेगी। सूअरिया सचमुच गला फाड़कर लगातार चिल्लाए जा रही थी। नइकी महतारी आँगन में बैठकर मीठी जड़ें उबाल रही थी। बगल में भाजी के लिए कचरा काटकर दोने में रखा हुआ था। बाद में उसे टिल्लू ने बुलाकर चुपके से बताया था, उसके बाप ने पंचायत का दंड भरने और समाज को जिमाने के लिए सारे सूअर के छौनों को हाट में जाकर बेच दिया है। सुनकर उसका मुँह छोटा हो गया था, बाप रे! एक भी छौना काहे नहीं छोड़ा, अब तो सूअरिया चिल्लाकर जान खा देगी।

सूअरिया के लगातार चिल्लाने से परेशान होकर नइकी महतारी हाथ में छड़ी लेकर उसे बार-बार कोंच रही थी, मगर चर्बी से ठसाठस भरी मोटी सूअरिया पर कोई भी असर नहीं हो रहा था। वह और भी जोर से चिल्लाए जा रही थी। आँगन के एक कोने में बैठा दुखी यह सब उदासीन भाव से देख रहा था। दो-चार दिन में उसके साथ भी यही होनेवाला था। उसका बाप उसे भी कस्बे के किसी डोम के हाथों में बेच आनेवाला था। मगर उसके जाने पर कोई इस सूअरिया की तरह उसके लिए रोने-चिल्लानेवाला नहीं था।

रात को सुखी लौटा तो वह आज सचमुच में सुखी दिख रहा था। हाथ में दो मुर्गे लटक रहे थे, साथ में ठर्रा की बोतल भी थी। देर रात तक दोनों पति-पत्नी मुर्गा पकाकर दारू के साथ खाते रहे थे और फिर दरवाजा हुडकाकर सो गए थे। उनके सोने के बाद दुखी धीरे से जाकर बर्तनों में झाँक आया था। उनमें चिचोड़ी हुई हड्डियों और थोड़े से मीठे जड़ों के सिवा कुछ भी न था। दो-चार हड्डियाँ चबाकर और मीठी जड़ें चूसकर वह बाड़े के पास आकर चुपचाप लेट गया था।

सूअरिया इस समय भी चीखे जा रही थी। अपने छौनों के लिए दूध से उसका थन फटा जा रहा था। दुखी ने भूख से निस्तार पाने के लिए आज अपने घुटनों को पेट पर और भी कसकर बाँधा था। उसकी भूख आज एक मरे हुए-से दर्द में परिवर्तित हो गया था जैसे। उससे बर्दास्त नहीं हो पा रहा था। सूअर की लगातार चें-चें और घोत-घोत के बीच न जाने उसे कब नींद आ गई थी - भूख और थकान से भरी हुई एक बेहोशी जैसी नींद...

न जाने कितनी रात गए एक तुमुल कोलाहल के कारण उसकी नींद खुल गई थी। हड़बड़ाकर उठते हुए उसने देखा था, उसका बाप बाँस की एक पतली छड़ी से सूअरिया को सटासट पीटे जा रहा था। उसके लगातार चीखने से शायद परेशान होकर वह नींद से उठकर चला आया था। उसकी मद्यप लाल घुलघुली आँखें क्रोध से भट्टी की तरह

सुलग रही थीं। छड़ी के दारुण आघात से सूअरिया प्राणांतक चिल्लाए जा रही थी। दुखी भयभीत होकर बाड़े की आड़ में दुबक गया था। उसका बाप जब नशे में होता है तब बहुत गुस्से में रहता है। कई बार बिना किसी अपराध वह उसकी पिटाई कर चुका है। वह इस समय उसके सामने पड़कर उसके क्रोध का पात्र नहीं बनना चाहता था। देर तक अश्रव्य गाली-गलौज करके तथा सूअरिया को पीटकर अब शायद सुखी थक चुका था, इसलिए अपनी छड़ी उसकी पीठ पर तोड़कर बड़बड़ाते हुए वह कोठरी के अंदर चला गया था।

उसके अंदर जाने के बहुत देर बाद दुखी धीरे-धीरे बाड़े के पीछे से निकला था। वह बेहद सहमा हुआ था। अपने पंजों के बल चलता हुआ वह सूअर के पास जा खड़ा हुआ था। सूअर भी बुरी तरह से पिटने के बाद अब चुपचाप खड़ी थी। चाँद के म्लान आलोक में उसकी गोरी देह पर छड़ी के लाल निशान अस्पष्ट-से दिख रहे थे। खाल जगह-जगह से उधड़ी हुई थी, खून की बूँदे भी यहाँ-वहाँ से रिस आई थी। उसके सूजे हुए थन से दूध की बूँदें टपक-टपककर जमीन पर फैल रही थीं।

दोनों प्राणी बहुत देर तक एक-दूसरे की तरफ चुपचाप देखते रहे थे। दोनों के तन-मन में ढेर-से घाव और बेइंतहा दर्द था। आँखें भी दोनों की पनिआई हुई थीं। एक मूक संवेदना भाषा से परे होकर एक-दूसरे तक निःशब्द पहुँच रही थीं। दोनों के अंदर पीड़ा का एक-सा स्वाद था, एक-सी अनुभूति थी। दुखी के पेट में अन्न की भूख थी तो सूअरिया के मन में ममता की भूख। एक का घर उजड़ रहा था तो एक की कोख! आज की रात दोनों प्राणी भूखे थे - हर भाषा में, हर अर्थ में...

दुखी ने थोड़ी देर बाद बढ़कर सूअर की देह पर करुणा से भरकर हाथ फेरा था। एक साथ दोनों की आँखें गीली हो उठी थीं। न जाने उस मूक सूअर ने क्या अनुभव करके एक कदम आगे बढ़कर दुखी के पेट में अपनी थुथनी धँसा दी थी। दुखी ने भी हाथ बढ़ाकर उसके हृष्ट-पुष्ट शरीर को अपनी दोनों बाँहों में समेट लिया था

पिटाई के बाद सूअरिया फिर रातभर नहीं चिल्लाई थी। सुखी देशी दारू के नशे में अपनी नवोढ़ा से लिपटकर सारी रात चैन की नींद सोया था। सुबह-सुबह मुर्गे ने छत पर चढ़कर बाँग लगाई तो सुखी अपनी जोरू को जगाकर स्वय अँगड़ाई लेता हुआ कोठरी से बाहर निकल आया। पूरब का सिंदूर चढ़ा आकाश अब धीरे-धीरे सुनहरा पड़ रहा था। नीम की डालों पर पक्षियों का कलरव मचा था और मचान पर चढ़े तरोई के पीले, टटके फूल सुबह की मंद हवा में हल्के-हल्के थियरा रहे थे। सुखी का मन एक अनाम सुख से भर उठा था। रात को मुर्गा, दारू का जश्न, फिर नई मेहरारू का

संग-साथ और अब ये ठंडी, ताजी सुबह... ऊपरवाले की किरपा रही तो आज दो-चार मुर्दे भी जुट ही जाएँगे!

अँगड़ाई तोडते हुए अनायास ही उसकी दृष्टि सूअर के बाड़े की तरफ चली गई थी और वहाँ का दृश्य देखते ही वह स्तब्ध होकर रह गया था। तब तक उसकी मेहरारू धनिया भी उसके बगल में आ खड़ी हुई थी और वह भी ठगी-सी अब उधर ही देख रही थी। बाड़े के भीतर मोटी सूअरिया फैलकर सोई हुई थी। उसकी अधमुँदी आँखों और चर्बी चढ़े चेहरे से मातृत्व के परम सुख और संतुष्टि के भाव छलक रहे थे। उसी के पास उसके मोटे पेट से लिपटकर दुखी बेखबर सोया हुआ था। उसके मुँह में सुअरिया का मोटा थन ठुँसा हुआ था और उसके हल्के-हल्के तिरतिराते हुए होंठों के दोनों कोनों से बहकर दूध की पतली धारा उसके गालों पर फैल रही थी। वह नींद में शायद कोई अच्छा-सा सपना देखकर मुस्करा रहा था। उसकी तरफ आश्चर्य और घृणा से देखते हुए सुखी यकायक बड़बड़ा उठा था - साला, सूअर का छौना...! दुखी आज सचमुच सूअर का छौना बन गया था और जीवन में पहली बार सही अर्थों में सुखी था।